महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

बी.ए. द्वितीय वर्ष (सेमेस्टर-IV) परीक्षा, जून-2025 (नियमित)

विषय: भारतीय राजव्यवस्था (INDIAN POLITICAL SYSTEM) - मॉडल पेपर 2

पूर्णांक: 70 समय: 3 घंटे

सामान्य निर्देश:

1. इस प्रश्न-पत्र के दो भाग हैं: भाग-अ और भाग-ब।
2. भाग-अ के सभी दस प्रश्न अनिवार्य हैं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अधिकतम 50 शब्दों में दीजिए। (10 x 2 = 20 अंक)
3. भाग-ब में कुल दस प्रश्न हैं। किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक इकाई से कम-से-कम एक प्रश्न का चयन करना अनिवार्य है। उत्तर सीमा 400 शब्दों से अधिक। (5 x 10 = 50 अंक)

भाग-अ (अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न) (20 अंक)

(उत्तर सीमा: अधिकतम 50 शब्द प्रति प्रश्न)

1. 'मूल संरचना का सिद्धांत' (Basic Structure Doctrine) क्या है?
2. भारतीय संविधान के 'भाग IVA' का विषय क्या है?
3. 'समान नागरिक संहिता' (Uniform Civil Code - UCC) का उद्देश्य क्या है?
4. 'सामूहिक उत्तरदायित्व' (Collective Responsibility) से क्या अभिप्राय है?
5. भारत के 'महान्यायवादी' (Attorney General) का मुख्य कार्य क्या है?
6. 'अखिल भारतीय सेवाओं' (All India Services) का सृजन कौन करता है?
7. 'अंतर्राज्यीय परिषद्' (Inter-State Council) की स्थापना का उद्देश्य क्या है?
8. 'संवैधानिक संशोधन' की प्रक्रिया किस अनुच्छेद में वर्णित है?
9. 'दलबदल विरोधी कानून' (Anti-Defection Law) कब लागू हुआ?
10. 'निर्वाचन आयोग' (Election Commission) के दो कार्य बताइए।

भाग-ब (निबंधात्मक/दीर्घ उत्तरीय प्रश्न) (50 अंक)

(किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए, प्रत्येक इकाई से कम-से-कम एक प्रश्न अनिवार्य। उत्तर सीमा: 400 शब्दों से अधिक)

इकाई-I: संवैधानिक ढाँचा और अधिकार

1. मौलिक कर्तव्यों (Fundamental Duties) के महत्व का वर्णन कीजिए। क्या वे राज्य के नीति निदेशक तत्वों (DPSP) के पूरक हैं?
2. भारतीय संविधान में वर्णित 'आपातकालीन प्रावधानों' का विस्तृत विश्लेषण कीजिए। भारतीय संघवाद पर इनका क्या प्रभाव पड़ता है?

इकाई-II: संघ और राज्य की कार्यपालिका एवं विधायिका

3. भारतीय राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्तियों (Discretionary Powers) का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
4. केंद्रीय मंत्रिपरिषद (Council of Ministers) और मंत्रिमंडल (Cabinet) के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए। मंत्रिपरिषद के कार्यकरण में प्रधानमंत्री की निर्णायक भूमिका को समझाइए।

5. न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) से आप क्या समझते हैं? भारतीय न्याय व्यवस्था में इसकी भूमिका और सीमाओं का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई-III: न्यायपालिका, संघवाद और राजनीतिक गतिकी

6. भारतीय राजनीति में राज्यपाल की दोहरी भूमिका (Double Role) की विवेचना कीजिए। क्या राज्यपाल का पद केंद्र के एजेंट के रूप में कार्य करता है?
7. 'दलबदल विरोधी कानून' (दसवीं अनुसूची) के उद्देश्यों और सीमाओं पर प्रकाश डालिए। क्या यह कानून लोकतांत्रिक भावनाओं का दमन करता है?
8. भारत में निर्वाचन सुधारों (Electoral Reforms) की आवश्यकता और प्रमुख सुझावों का वर्णन कीजिए।
9. जाति (Caste) भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में कैसे कार्य करती है? भारतीय लोकतंत्र पर इसके प्रभाव का विश्लेषण कीजिए।
10. नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) की शक्तियों और कार्यों का वर्णन कीजिए। क्यों उसे 'सार्वजनिक धन का संरक्षक' कहा जाता है?

मॉडल प्रश्न-पत्र 2 की उत्तर कुंजी (विस्तृत उत्तर)

भाग-अ के उत्तर (अति लघु उत्तरात्मक)

1. 'मूल संरचना का सिद्धांत' (Basic Structure Doctrine) क्या है? यह सिद्धांत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) मामले में प्रतिपादित किया गया। इसके अनुसार, संसद को संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की शक्ति है, लेकिन वह संविधान की "मूल संरचना" (जैसे लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, संघवाद) को नष्ट या परिवर्तित नहीं कर सकती।
2. भारतीय संविधान के 'भाग IVA' का विषय क्या है? भारतीय संविधान के भाग IV-A का संबंध नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों (Fundamental Duties) से है। इसे 42वें संविधान संशोधन (1976) द्वारा सरदार स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिश पर जोड़ा गया था। वर्तमान में अनुच्छेद 51-A के तहत 11 मौलिक कर्तव्य हैं।
3. 'समान नागरिक संहिता' (Uniform Civil Code - UCC) का उद्देश्य क्या है? UCC का उद्देश्य देश के सभी नागरिकों (चाहे वे किसी भी धर्म के हों) के लिए विवाह, तलाक, विरासत, गोद लेने और संपत्ति के उत्तराधिकार जैसे व्यक्तिगत मामलों में एक समान कानून लागू करना है। इसका प्रावधान अनुच्छेद 44 में राज्य के नीति निदेशक तत्व के रूप में किया गया है।
4. 'सामूहिक उत्तरदायित्व' (Collective Responsibility) से क्या अभिप्राय है? संसदीय प्रणाली का यह सिद्धांत बताता है कि मंत्रिपरिषद के सभी सदस्य अपने सभी कार्यों और नीतियों के लिए संयुक्त रूप से (सामूहिक रूप से) लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इसका अर्थ है कि एक मंत्री के निर्णय को पूरी मंत्रिपरिषद का निर्णय माना जाता है, और यदि लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित होता है, तो सभी मंत्रियों को त्यागपत्र देना होता है।
5. भारत के 'महान्यायवादी' (Attorney General) का मुख्य कार्य क्या है? महान्यायवादी (अनुच्छेद 76) भारत सरकार का सर्वोच्च कानूनी अधिकारी होता है। उसका मुख्य कार्य भारत सरकार को कानूनी मामलों पर सलाह देना तथा राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए कानूनी कर्तव्यों का पालन करना है। उसे संसद के दोनों सदनों की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होता है, पर मतदान का नहीं।
6. 'अखिल भारतीय सेवाओं' (All India Services) का सृजन कौन करता है? अखिल भारतीय सेवाओं (जैसे IAS, IPS, IFS) का सृजन करने की शक्ति भारतीय संसद में निहित है। विशेष रूप से, राज्यसभा (अनुच्छेद 312 के तहत) अपने उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके एक या एक से अधिक नई अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन की पहल कर सकती है।
7. 'अंतर्राज्यीय परिषद्' (Inter-State Council) की स्थापना का उद्देश्य क्या है? अंतर्राज्यीय परिषद् (अनुच्छेद 263) की स्थापना का उद्देश्य केंद्र और राज्यों के बीच तथा विभिन्न राज्यों के आपसी विवादों की जाँच करना और उन पर सलाह देना है। इसका लक्ष्य देश में संघीय ढाँचे के तहत समन्वय और सहकारी संघवाद को बढ़ावा देना है।

8. 'संवैधानिक संशोधन' की प्रक्रिया किस अनुच्छेद में वर्णित है? भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन भाग XX के अनुच्छेद 368 में किया गया है। यह प्रक्रिया संसद को संविधान में परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान करती है, जिसे तीन तरीकों से किया जा सकता है: साधारण बहुमत, विशेष बहुमत, और विशेष बहुमत + राज्यों का अनुसमर्थन।
9. 'दलबदल विरोधी कानून' (Anti-Defection Law) कब लागू हुआ? दलबदल विरोधी कानून 52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 द्वारा लागू किया गया था। इसे संविधान की दसवीं अनुसूची में जोड़ा गया था। इसका उद्देश्य दल-बदल करके सरकार को अस्थिर करने वाले विधायकों और सांसदों को अयोग्य घोषित करना है।
10. 'निर्वाचन आयोग' (Election Commission) के दो कार्य बताइए।
    - चुनाव कराना: राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद और राज्य विधानमंडल के चुनावों के संचालन, निर्देशन और नियंत्रण का कार्य करना।
    - दलों को मान्यता: राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान करना और उन्हें चुनाव चिन्ह आवंटित करना।

भाग-ब के उत्तर (निबंधात्मक/दीर्घ उत्तरीय)

इकाई-I: संवैधानिक ढाँचा और अधिकार

1. मौलिक कर्तव्यों (Fundamental Duties) के महत्व का वर्णन कीजिए। क्या वे राज्य के नीति निदेशक तत्वों (DPSP) के पूरक हैं?

परिचय: मौलिक कर्तव्यों को 42वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा संविधान के भाग IV-A में अनुच्छेद 51-A के तहत जोड़ा गया था। सरदार स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिश पर जोड़े गए ये कर्तव्य नागरिकों को याद दिलाते हैं कि उन्हें अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का भी निर्वहन करना चाहिए।

मौलिक कर्तव्यों का महत्व (Importance):

1. अधिकार और कर्तव्य में संतुलन: ये संविधान में मौलिक अधिकारों के साथ नागरिकों के दायित्वों को जोड़कर लोकतांत्रिक संतुलन स्थापित करते हैं।
2. राष्ट्रीय भावना का विकास: ये देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता को बनाए रखने, राष्ट्रीय प्रतीकों (झंडा, राष्ट्रगान) का सम्मान करने और मिश्रित संस्कृति को बढ़ावा देने की भावना को मजबूत करते हैं।
3. चेतावनी का कार्य: ये नागरिक विरोधी और राष्ट्र विरोधी गतिविधियों के विरुद्ध एक चेतावनी के रूप में कार्य करते हैं।
4. न्यायालयों के लिए सहायक: न्यायालय मौलिक कर्तव्यों का उपयोग किसी कानून की संवैधानिकता का निर्धारण करने में कर सकते हैं। यदि कोई कानून DPSP को प्रभावी बनाने या किसी मौलिक कर्तव्य को पूरा करने के लिए बनाया गया है, तो उसे उचित (Reasonable) माना जा सकता है।
5. नागरिकों के लिए प्रेरणा: ये नागरिकों के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं, उन्हें उत्कृष्टता के लिए प्रयास करने के लिए प्रेरित करते हैं।

क्या मौलिक कर्तव्य DPSP के पूरक हैं?

हाँ, मौलिक कर्तव्य और राज्य के नीति निदेशक तत्व (DPSP) एक-दूसरे के पूरक हैं:

मौलिक कर्तव्य (FDs)	राज्य के नीति निदेशक तत्व (DPSP)
निर्देशित	नागरिकों के लिए (क्या करना चाहिए)।
प्रकृति	गैर-न्यायोचित।
लक्ष्य	नागरिकों के दायित्व को पूरा कराना।

पूरकता (Complementarity):

1. **समान लक्ष्य:** दोनों ही प्रावधान संविधान द्वारा निर्धारित राष्ट्रीय लक्ष्यों (सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण) की ओर बढ़ने के लिए गैर-न्यायोचित साधनों के रूप में कार्य करते हैं।
2. **नीतियों को बल:** जब नागरिक मौलिक कर्तव्यों (जैसे सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा) का पालन करते हैं, तो सरकार के लिए DPSP (जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार) पर आधारित नीतियाँ लागू करना आसान हो जाता है।
3. **संवैधानिक विवेक:** DPSP सरकार को निर्देशित करते हैं, जबकि मौलिक कर्तव्य नागरिकों को निर्देशित करते हैं। दोनों मिलकर एक संवैधानिक विवेक का निर्माण करते हैं, जो राष्ट्र को उसके आदर्शों की ओर ले जाता है।

निष्कर्ष: मौलिक कर्तव्य देश के प्रति नागरिक के नैतिक दायित्वों को परिभाषित करके लोकतंत्र की जड़ें मजबूत करते हैं, जबकि DPSP सरकार के दायित्वों को। इस प्रकार, वे दोनों मिलकर भारतीय राज्य व्यवस्था के नैतिक और सामाजिक ताने-बाने को पूरा करते हैं।

2. भारतीय संविधान में वर्णित 'आपातकालीन प्रावधानों' का विस्तृत विश्लेषण कीजिए। भारतीय संघवाद पर इनका क्या प्रभाव पड़ता है?

परिचय: भारतीय संविधान के भाग XVIII (अनुच्छेद 352 से 360) में आपातकालीन प्रावधानों का उल्लेख है। ये प्रावधान केंद्र सरकार को किसी भी असामान्य स्थिति का प्रभावी ढंग से मुकाबला करने के लिए विशेष शक्तियाँ प्रदान करते हैं, जिससे देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा हो सके।

आपातकालीन प्रावधानों के प्रकार:

1. **राष्ट्रीय आपातकाल (National Emergency) - अनुच्छेद 352:**
   - **आधार:** युद्ध, बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह।
   - **घोषणा:** राष्ट्रपति द्वारा केंद्रीय मंत्रिमंडल की लिखित सिफारिश पर। (मूलतः 'आंतरिक अशांति' था, जिसे 44वें संशोधन द्वारा 'सशस्त्र विद्रोह' से बदला गया)।
   - **संसदीय अनुमोदन:** घोषणा के 1 माह के भीतर संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से अनुमोदित होना आवश्यक है।
2. **राज्य में राष्ट्रपति शासन (President's Rule) - अनुच्छेद 356:**
   - **आधार:** राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता या राज्य का केंद्र के निर्देशों का पालन न करना (अनुच्छेद 365)।
   - **घोषणा:** राज्यपाल की रिपोर्ट पर या राष्ट्रपति के स्वविवेक पर।
   - **संसदीय अनुमोदन:** घोषणा के 2 माह के भीतर साधारण बहुमत से अनुमोदित होना आवश्यक है।
3. **वित्तीय आपातकाल (Financial Emergency) - अनुच्छेद 360:**
   - **आधार:** जब देश की वित्तीय स्थिरता या साख को खतरा हो।
   - **परिणाम:** केंद्र सरकार राज्यों को वित्तीय मामलों में निर्देश दे सकती है; सरकारी कर्मचारियों के वेतन और भत्ते कम किए जा सकते हैं।

भारतीय संघवाद पर आपातकालीन प्रावधानों का प्रभाव:

आपातकाल का भारतीय संघवाद पर सबसे बड़ा प्रभाव यह है कि यह देश के संघीय ढाँचे को एकात्मक (Unitary) ढांचे में बदल देता है।

1. **केंद्र का पूर्ण नियंत्रण:** राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान, केंद्र सरकार राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बना सकती है। राज्य सरकारें निलंबित नहीं होतीं, लेकिन वे पूरी तरह से केंद्र के नियंत्रण में आ जाती हैं।
2. **राज्य सरकार का निलंबन:** अनुच्छेद 356 के तहत, राज्य विधानमंडल (विधानसभा) निलंबित या भंग हो जाता है, और राज्य की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति (राज्यपाल के माध्यम से) द्वारा प्रयोग की जाती है। यह राज्यों की स्वायत्तता पर सबसे गंभीर हमला है।
3. **वित्तीय निर्भरता:** वित्तीय आपातकाल में, राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता समाप्त हो जाती है। केंद्र राज्यों को अपने कर्मचारियों के वेतन में कटौती करने का निर्देश दे सकता है।

4. **मौलिक अधिकारों का निलंबन:** राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान, अनुच्छेद 19 (6 स्वतंत्रताएँ) स्वतः निलंबित हो जाता है, और अन्य मौलिक अधिकारों को राष्ट्रपति के आदेश से निलंबित किया जा सकता है (अनुच्छेद 20 और 21 को छोड़कर)।

आलोचना और निष्कर्ष: आपातकालीन प्रावधानों की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इनका दुरुपयोग करके राज्यों को नियंत्रण में लिया जा सकता है, विशेष रूप से अनुच्छेद 356 का। हालांकि, 44वें संशोधन (1978) ने इन प्रावधानों के दुरुपयोग को सीमित करने का प्रयास किया है। आपातकाल भारतीय संविधान की एक अद्वितीय विशेषता है, जो यह सुनिश्चित करती है कि संकट के समय देश की एकता और अखंडता किसी भी कीमत पर बनी रहे, जिससे संघवाद केवल सामान्य परिस्थितियों के लिए एक सुविधा (Convenience) बन जाता है, और आवश्यकता पड़ने पर देश तुरंत एकात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

इकाई-II: संघ और राज्य की कार्यपालिका एवं विधायिका

3. भारतीय राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्तियों (Discretionary Powers) का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

परिचय: भारत का राष्ट्रपति नाममात्र का कार्यकारी प्रमुख होता है और सामान्यतः केंद्रीय मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है। हालांकि, कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जहाँ राष्ट्रपति अपने विवेक (Discretion) का प्रयोग कर सकते हैं, भले ही संविधान ने इन शक्तियों को स्पष्ट रूप से परिभाषित न किया हो।

राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्तियाँ:

ये शक्तियाँ संवैधानिक नहीं, बल्कि **परिस्थितिगत (Situational)** होती हैं:

1. **प्रधानमंत्री की नियुक्ति:** जब लोकसभा में किसी भी दल या गठबंधन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है, तो राष्ट्रपति अपने विवेक से सबसे बड़े दल के नेता या गठबंधन के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त कर सकते हैं और उसे एक निश्चित समय के भीतर बहुमत सिद्ध करने के लिए कह सकते हैं।
2. **मंत्रिपरिषद की बर्खास्तगी:** यदि मंत्रिपरिषद लोकसभा में विश्वास मत खो देती है, लेकिन इस्तीफा नहीं देती है, तो राष्ट्रपति उसे बर्खास्त कर सकते हैं।
3. **लोकसभा का विघटन:** यदि मंत्रिपरिषद ने विश्वास मत खो दिया है, तो राष्ट्रपति के पास यह विवेकाधिकार होता है कि वह मंत्रिपरिषद की सलाह पर लोकसभा को भंग करे या विपक्षी दलों को सरकार बनाने का मौका दे।
4. **विधेयकों पर वीटो का प्रयोग (Suspensive Veto):** राष्ट्रपति किसी सामान्य विधेयक को संसद के पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है। हालांकि, यदि संसद उसे दोबारा बिना संशोधन के पारित कर देती है, तो राष्ट्रपति को सहमति देनी होती है।
5. **जेबी वीटो (Pocket Veto) का प्रयोग:** संविधान विधेयक पर निर्णय लेने के लिए राष्ट्रपति को कोई समय सीमा निर्धारित नहीं करता। वह अनिश्चित काल के लिए विधेयक को अपने पास रख सकता है (जैसे 1986 में डाकघर विधेयक पर ज्ञानी जैल सिंह ने किया था)।
6. **सूचना प्राप्त करने का अधिकार:** राष्ट्रपति प्रधानमंत्री से प्रशासन और विधान से संबंधित किसी भी मामले की जानकारी मांग सकते हैं (अनुच्छेद 78)।

आलोचनात्मक मूल्यांकन:

- **सकारात्मक पक्ष (महत्व):** ये विवेकाधीन शक्तियाँ राष्ट्रपति को **'संविधान के संरक्षक'** की भूमिका निभाने में मदद करती हैं। संकट के समय, जैसे कि अस्थिर त्रिशंकु संसद (Hung Parliament) की स्थिति में, राष्ट्रपति की भूमिका केंद्र में स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हो जाती है। ये शक्तियाँ कार्यपालिका (मंत्रिपरिषद) को पूर्ण रूप से निरंकुश होने से भी रोकती हैं।
- **नकारात्मक पक्ष (आलोचना):**
  - **राजनीतिकरण का खतरा:** आलोचक मानते हैं कि राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग राजनीतिक आधार पर कर सकते हैं, खासकर तब जब वे केंद्र में सत्तारूढ़ दल के प्रति सहानुभूति रखते हों (जैसे कि प्रधानमंत्री की नियुक्ति के मामले में)।

- **परामर्श की अस्पष्टता:** कई मामलों में, राष्ट्रपति द्वारा सलाह का प्रयोग मंत्रिपरिषद की इच्छा के विरुद्ध किया गया है, जिससे संवैधानिक विवाद उत्पन्न हुए हैं।

निष्कर्ष: भारतीय राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्तियाँ सीमित, लेकिन महत्वपूर्ण हैं। वे केवल 'रबर स्टैम्प' न बनकर, बल्कि संविधान के संरक्षक और लोकतंत्र के प्रहरी के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाती हैं, खासकर राजनीतिक अस्थिरता के समय। इन शक्तियों का प्रयोग हमेशा संवैधानिक नैतिकता और निष्पक्षता के उच्च मानकों पर आधारित होना चाहिए।

4. केंद्रीय मंत्रिपरिषद (Council of Ministers) और मंत्रिमंडल (Cabinet) के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए। मंत्रिपरिषद के कार्यकरण में प्रधानमंत्री की निर्णायक भूमिका को समझाइए।

परिचय: भारत की संसदीय प्रणाली में, राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होती है। मंत्रिपरिषद (Council of Ministers) और मंत्रिमंडल (Cabinet) दोनों एक ही कार्यकारी निकाय के हिस्से हैं, लेकिन आकार, भूमिका और शक्तियों के मामले में भिन्न हैं।

मंत्रिपरिषद और मंत्रिमंडल में अंतर:

आधार	मंत्रिपरिषद (Council of Ministers)	मंत्रिमंडल (Cabinet)
संरचना	मंत्रियों का वृहत समूह; इसमें सभी 3 श्रेणियाँ (कैबिनेट, राज्य और उपमंत्री) शामिल होती हैं।	मंत्रिपरिषद का एक छोटा, भीतरी वृत्त; इसमें केवल कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं।
सदस्य संख्या	60 से 70 मंत्री (कुल मंत्रियों का लगभग 15%)।	15 से 20 मंत्री।
कार्य/ शक्ति	सैद्धांतिक रूप से सभी कार्यकारी शक्तियाँ मंत्रिपरिषद में निहित हैं।	वास्तव में सभी शक्तियाँ मंत्रिमंडल द्वारा ही प्रयोग की जाती हैं। यह मंत्रिपरिषद के नाम पर निर्णय लेता है।
निर्णय लेना	यह मुश्किल से बैठक करती है। इसके कार्य मंत्रिमंडल द्वारा लिए गए निर्णयों का अनुपालन करना है।	यह वास्तविक नीति निर्धारक है। यह अक्सर बैठक करती है और सभी महत्वपूर्ण निर्णय लेती है।

निष्कर्ष: मंत्रिमंडल मंत्रिपरिषद के भीतर एक छोटा, शक्तिशाली "पावर सेंटर" है।

मंत्रिपरिषद के कार्यकरण में प्रधानमंत्री की निर्णायक भूमिका:

प्रधानमंत्री (PM) मंत्रिपरिषद का अनिवार्य रूप से नेता होता है और उसके कार्यकरण को नियंत्रित करता है।

1. **निर्माण का केंद्र:** प्रधानमंत्री मंत्रियों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति को सलाह देता है और उन्हें विभागों का आवंटन करता है। वह अपने पसंद के लोगों को शामिल करके मंत्रिपरिषद की संरचना को आकार देता है।
2. **बैठकों का नेतृत्व:** वह मंत्रिमंडल की बैठकों की अध्यक्षता करता है, बैठकों का एजेंडा निर्धारित करता है, और चर्चाओं पर अंतिम नियंत्रण रखता है।
3. **समन्वय और नियंत्रण:** प्रधानमंत्री विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के बीच समन्वय स्थापित करता है ताकि सरकार एक इकाई के रूप में कार्य कर सके। वह नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की निगरानी करता है।
4. **पद का जीवन और मृत्यु:** प्रधानमंत्री के पद से त्यागपत्र देने या उसकी मृत्यु होने पर, पूरी मंत्रिपरिषद भंग हो जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि मंत्रिपरिषद का अस्तित्व प्रधानमंत्री पर निर्भर करता है।
5. **बर्खास्तगी की शक्ति:** प्रधानमंत्री किसी भी मंत्री को इस्तीफा देने के लिए कह सकता है या राष्ट्रपति को उसे बर्खास्त करने की सलाह दे सकता है, जिससे वह मंत्रियों पर नियंत्रण बनाए रखता है।

निष्कर्ष: मंत्रिपरिषद और मंत्रिमंडल औपचारिक रूप से अलग हो सकते हैं, लेकिन प्रधानमंत्री अपनी निर्णायक शक्तियों के कारण न केवल मंत्रिमंडल को नियंत्रित करता है, बल्कि वह मंत्रिपरिषद के "सूर्य" के समान है जिसके चारों ओर अन्य मंत्री घूमते हैं। उनकी नेतृत्व क्षमता ही सरकार की सफलता या विफलता का निर्धारण करती है।

5. न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) से आप क्या समझते हैं? भारतीय न्याय व्यवस्था में इसकी भूमिका और सीमाओं का मूल्यांकन कीजिए।

परिचय: न्यायिक सक्रियता का अर्थ है न्यायपालिका द्वारा विधायिका और कार्यपालिका के क्षेत्रों में हस्तक्षेप करना, विशेष रूप से तब जब वे अपने संवैधानिक दायित्वों को पूरा करने में विफल रहते हैं। इसका उदय 1970 के दशक के उत्तरार्ध में जनहित याचिका (Public Interest Litigation - PIL) के माध्यम से हुआ, जिसके जनक न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती माने जाते हैं।

न्यायिक सक्रियता की भूमिका (महत्व):

1. न्याय तक पहुँच: PIL के माध्यम से न्यायिक सक्रियता ने समाज के गरीब और कमजोर वर्गों को न्याय तक पहुँचने में मदद की है, क्योंकि अब कोई भी व्यक्ति उनके अधिकारों के उल्लंघन के लिए न्यायालय में जा सकता है।
2. मौलिक अधिकारों का विस्तार: न्यायपालिका ने जीवन के अधिकार (अनुच्छेद 21) की व्यापक व्याख्या करके इसमें स्वच्छ पर्यावरण, स्वास्थ्य का अधिकार, शिक्षा का अधिकार आदि को शामिल किया है, जिससे नागरिकों के अधिकार क्षेत्र का विस्तार हुआ है।
3. शासन में जवाबदेही: इसने विधायिका और कार्यपालिका को उनके दायित्वों के प्रति अधिक जवाबदेह बनाया है। न्यायालयों ने भ्रष्टाचार, पर्यावरण प्रदूषण और कुशासन के मामलों में सक्रियता दिखाई है।
4. संवैधानिक संतुलन: जब राजनीतिक संस्थाएँ गतिरोध या निष्क्रियता का शिकार हो जाती हैं, तो न्यायिक सक्रियता संवैधानिक संतुलन बनाए रखने और सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देने के लिए एक आवश्यक उपकरण के रूप में कार्य करती है।

न्यायिक सक्रियता की सीमाएँ (आलोचना):

1. शक्तियों के पृथक्करण का उल्लंघन: न्यायिक सक्रियता का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करती है, क्योंकि न्यायपालिका सरकार के अन्य अंगों के कार्यक्षेत्र में प्रवेश कर जाती है।
2. कानून बनाना (Judicial Legislation): कई मामलों में, न्यायालयों ने ऐसे निर्देश दिए हैं जो प्रभावी रूप से कानून बनाने के समान हैं (जैसे विशाखा दिशानिर्देश), जो विधायिका का कार्य है।
3. शासन में बाधा: जब न्यायपालिका नीति निर्माण, बजट आवंटन या प्रशासनिक मामलों (जैसे सड़कों का निर्माण, सरकारी योजनाओं का प्रबंधन) में प्रवेश करती है, तो यह कार्यपालिका के दैनिक कार्यकरण में बाधा उत्पन्न करती है। इसे न्यायिक अतिक्रमण (Judicial Overreach) भी कहा जाता है।
4. क्षमता का अभाव: न्यायाधीश प्रशासनिक और वित्तीय मामलों में आवश्यक विशेषज्ञता नहीं रखते हैं, इसलिए उनके द्वारा दिए गए प्रशासनिक निर्देश कभी-कभी अव्यावहारिक हो सकते हैं।

निष्कर्ष: न्यायिक सक्रियता भारतीय लोकतंत्र के लिए एक दोधारी तलवार है। यह एक वरदान है क्योंकि यह समाज के वंचित वर्गों को न्याय दिलाती है और कार्यपालिका को निरंकुश होने से रोकती है। हालांकि, इसे नियंत्रित और संयमित रखना आवश्यक है ताकि यह न्यायिक अतिक्रमण में न बदल जाए। न्यायपालिका को सक्रियता और आत्म-संयम (Judicial Restraint) के बीच एक स्वस्थ संतुलन बनाए रखना चाहिए।

इकाई-III: न्यायपालिका, संघवाद और राजनीतिक गतिकी

6. भारतीय राजनीति में राज्यपाल की दोहरी भूमिका (Double Role) की विवेचना कीजिए। क्या राज्यपाल का पद केंद्र के एजेंट के रूप में कार्य करता है?

परिचय: राज्यपाल (Governor) राज्य का संवैधानिक मुखिया होता है, जो केंद्र में राष्ट्रपति के समान होता है। हालांकि, राज्यपाल की भूमिका अद्वितीय है क्योंकि वह दोहरी जिम्मेदारी निभाते हैं: एक ओर वह राज्य का संवैधानिक मुखिया होता है, वहीं दूसरी ओर वह केंद्र सरकार के प्रतिनिधि (Agent) के रूप में भी कार्य करता है।

राज्यपाल की दोहरी भूमिका:

1. राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रूप में (Constitutional Head):
    - वह राज्य की कार्यपालिका का औपचारिक प्रमुख होता है, और सभी कार्यकारी निर्णय उसके नाम पर लिए जाते हैं।

- वह मुख्यमंत्री और मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है (अनुच्छेद 163)।
- वह राज्य के उच्च अधिकारियों (महाधिवक्ता, राज्य चुनाव आयुक्त) की नियुक्ति करता है।

2. केंद्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में (Agent of the Centre):
    - राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति (वास्तव में केंद्रीय मंत्रिमंडल) द्वारा की जाती है और वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है (अर्थात् केंद्र सरकार की इच्छा पर)।
    - वह केंद्र को राज्य के प्रशासनिक और संवैधानिक मामलों की रिपोर्ट भेजता है।
    - वह राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कुछ विधेयकों को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर सकता है।

क्या राज्यपाल का पद केंद्र के एजेंट के रूप में कार्य करता है?

हाँ, यह आरोप अक्सर लगाया जाता है कि राज्यपाल का पद केंद्र सरकार के एक एजेंट या जासूस के रूप में कार्य करता है, खासकर तब जब केंद्र और राज्य में अलग-अलग राजनीतिक दलों की सरकारें हों।

एजेंट के रूप में कार्य करने के उदाहरण (आलोचना):

1. मुख्यमंत्री की नियुक्ति में विवेक: त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति में, राज्यपाल प्रायः केंद्र में सत्तारूढ़ दल के पक्ष में निर्णय लेते हुए अपनी विवेकाधीन शक्ति का उपयोग करते हैं।
2. राष्ट्रपति शासन की सिफारिश (अनुच्छेद 356): राज्यपाल की रिपोर्ट पर ही राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाया जाता है। अतीत में, कई बार केंद्र सरकारों ने राज्यपाल के माध्यम से अपनी विरोधी राज्य सरकारों को अस्थिर करने के लिए अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग किया है।
3. विधेयकों को आरक्षित करना: राज्यपाल राज्य विधानमंडल द्वारा पारित महत्वपूर्ण विधेयकों को अनावश्यक रूप से राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर देते हैं, जिससे राज्य की विधायी प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होती है।
4. स्थानांतरण और कार्यकाल: राज्यपाल को कार्यकाल की सुरक्षा प्राप्त नहीं है, और केंद्र सरकार उसे कभी भी हटा सकती है या स्थानांतरित कर सकती है, जिससे वह केंद्र के दबाव में काम करने को मजबूर होता है।

निष्कर्ष: विभिन्न आयोगों (जैसे सरकारीया आयोग, पुंछी आयोग) ने राज्यपाल के पद के दुरुपयोग को रोकने के लिए सिफारिशें की हैं। राज्यपाल का पद एक संतुलित भूमिका निभाने के लिए है - वह केवल एक औपचारिक मुखिया नहीं है, बल्कि केंद्र और राज्यों के बीच एक महत्वपूर्ण संवैधानिक सेतु है। हालांकि, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि वह संवैधानिक नैतिकता और तटस्थता के साथ कार्य करे, न कि केंद्र में सत्तारूढ़ दल के राजनीतिक एजेंट के रूप में।

7. 'दलबदल विरोधी कानून' (दसवीं अनुसूची) के उद्देश्यों और सीमाओं पर प्रकाश डालिए। क्या यह कानून लोकतांत्रिक भावनाओं का दमन करता है?

परिचय: दलबदल विरोधी कानून को 52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 द्वारा संविधान की दसवीं अनुसूची में जोड़ा गया था। इस कानून का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ या राजनीतिक लालच के लिए विधायकों और सांसदों द्वारा बार-बार दल-बदल करने की प्रवृत्ति को रोकना था, जिससे सरकारों में स्थिरता सुनिश्चित हो सके।

दलबदल विरोधी कानून के उद्देश्य:

1. स्थिरता सुनिश्चित करना: यह विधायकों को आसानी से एक पार्टी से दूसरी पार्टी में जाने से रोकता है, जिससे सरकारों में बार-बार आने वाली अस्थिरता समाप्त होती है।
2. भ्रष्टाचार पर अंकुश: यह विधायकों को 'आया राम, गया राम' की राजनीति से दूर रखने के लिए लाया गया था, जिसमें वे धन या मंत्री पद के लालच में दल बदलते थे।
3. मतदाताओं के विश्वास की रक्षा: जब कोई उम्मीदवार एक पार्टी के टिकट पर चुनाव जीतता है और बाद में दूसरी पार्टी में शामिल हो जाता है, तो यह मतदाताओं के साथ विश्वासघात होता है। यह कानून इस विश्वास की रक्षा करता है।
4. संसदीय अनुशासन: यह राजनीतिक दलों के भीतर अनुशासन बनाए रखने में मदद करता है।

दलबदल विरोधी कानून की सीमाएँ (आलोचना):

1. **फैसले में देरी:** अयोग्यता पर अंतिम निर्णय लेने की शक्ति सदन के पीठासीन अधिकारी (स्पीकर/सभापति) को दी गई है। अक्सर पीठासीन अधिकारी सत्तारूढ़ दल से जुड़ा होता है और निर्णय जानबूझकर लंबित किए जाते हैं।
2. **कानून का 'दमनकारी' स्वरूप:** यह कानून लोकतांत्रिक भावनाओं का दमन करता है क्योंकि यह विधायक को अपने दल की नीतियों से असहमत होने पर भी उस दल के विरुद्ध मतदान करने की स्वतंत्रता नहीं देता है।
3. **आंतरिक लोकतंत्र का अभाव:** यह कानून विधायकों को पार्टी नेतृत्व के फैसलों पर सवाल उठाने या आंतरिक मतभेद व्यक्त करने से रोकता है, जिससे पार्टी के भीतर तानाशाही और केंद्रीकरण को बढ़ावा मिलता है।
4. **सामूहिक दलबदल को प्रोत्साहन:** इस कानून ने व्यक्तिगत दलबदल पर रोक लगाई, लेकिन सामूहिक दलबदल (मूल रूप से 1/3, बाद में 2/3 सदस्यों द्वारा) को एक समय तक वैध माना, जिससे पूरी पार्टी का विभाजन होता रहा। (91वें संशोधन, 2003 द्वारा विलय को छोड़कर, विभाजन के प्रावधान को समाप्त कर दिया गया)।

क्या यह कानून लोकतांत्रिक भावनाओं का दमन करता है?

हाँ, यह एक हद तक लोकतांत्रिक भावनाओं का दमन करता है। लोकतंत्र में, प्रतिनिधि को अपनी अंतरात्मा की आवाज़ के आधार पर कार्य करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह कानून विधायकों को **पार्टी व्हिप (Party Whip)** के प्रति अंधाधुंध रूप से आज्ञाकारी बना देता है, भले ही वे अपने निर्वाचन क्षेत्र या राष्ट्र हित में पार्टी के निर्णय से सहमत न हों। इस प्रकार, यह प्रतिनिधि लोकतंत्र को **पार्टी लोकतंत्र (Party Democracy)** में बदल देता है।

निष्कर्ष: दलबदल विरोधी कानून राजनीतिक स्थिरता के लिए आवश्यक था, लेकिन यह विधायकों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अनावश्यक रूप से प्रतिबंध लगाता है। इस कानून की प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि अयोग्यता के मामलों पर निर्णय लेने की शक्ति पीठासीन अधिकारी से छीनकर इसे राष्ट्रपति/राज्यपाल या चुनाव आयोग जैसे किसी स्वतंत्र निकाय को सौंपी जाए।

8. भारत में निर्वाचन सुधारों (Electoral Reforms) की आवश्यकता और प्रमुख सुझावों का वर्णन कीजिए।

परिचय: भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और चुनाव इसकी आत्मा हैं। हालांकि, भारतीय चुनावी प्रणाली समय के साथ कई दोषों से ग्रसित हो गई है, जिसके कारण देश की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में सुधारों की तत्काल आवश्यकता है।

निर्वाचन सुधारों की आवश्यकता:

1. **धन और बाहुबल का बढ़ता प्रभाव:** चुनाव अत्यधिक महंगे हो गए हैं, जिससे ईमानदार और गरीब उम्मीदवारों के लिए चुनाव लड़ना असंभव हो गया है। आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोग (बाहुबल) राजनीति में प्रवेश कर रहे हैं।
2. **वंशवाद की राजनीति:** राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र की कमी के कारण नेतृत्व कुछ परिवारों तक सीमित हो गया है।
3. **जाति, धर्म और सांप्रदायिकता का उपयोग:** राजनीतिक दल चुनावों में राष्ट्रीय मुद्दों के बजाय जातिगत और सांप्रदायिक भावनाओं का दोहन करते हैं।
4. **फर्जी मतदान और मतदाता सूची में त्रुटियाँ:** कई बार फर्जी मतदान और मतदाता सूची में हेरफेर की शिकायतें आती हैं।
5. **दलबदल की समस्या:** दलबदल की प्रवृत्ति अभी भी सरकार की स्थिरता को प्रभावित करती है।

प्रमुख निर्वाचन सुधारों के सुझाव:

1. **आपराधिक तत्वों पर रोक:**
    - गंभीर आपराधिक आरोपों वाले व्यक्तियों को दोषी साबित होने से पहले भी चुनाव लड़ने से रोका जाए (चुनाव आयोग, विधि आयोग की सिफारिश)।
    - चुनाव जीतने के बाद, आपराधिक मामलों की सुनवाई के लिए विशेष फास्ट ट्रैक कोर्ट का गठन किया जाए।
2. **चुनाव वित्तपोषण में सुधार:**
    - **राज्य द्वारा वित्तपोषण (State Funding):** राजनीतिक दलों का चुनाव खर्च सरकार द्वारा एक निश्चित सीमा तक वहन किया जाना चाहिए, ताकि निजी और काले धन के प्रभाव को कम किया जा सके।

- **पार्टी के आंतरिक खातों का ऑडिट:** राजनीतिक दलों के खातों का अनिवार्य रूप से स्वतंत्र ऑडिट कराया जाए और उन्हें सार्वजनिक किया जाए।

3. **मतदान प्रक्रिया में सुधार:**
   - **NOTA को सशक्त करना:** यदि सर्वाधिक मत NOTA को मिलते हैं, तो उस निर्वाचन क्षेत्र में फिर से चुनाव कराए जाने चाहिए।
   - **ई-वोटिंग/प्रॉक्सी वोटिंग:** एनआरआई और प्रवासी मजदूरों के लिए प्रॉक्सी वोटिंग या ई-वोटिंग की सुविधा शुरू की जाए।
   - **मतदाता सूची को आधार से जोड़ना:** मतदाता सूची को आधार कार्ड से जोड़कर फर्जी मतदान पर रोक लगाई जाए।
4. **दलों में आंतरिक लोकतंत्र:**
   - सभी दलों में नियमित रूप से आंतरिक चुनाव कराना और पार्टी पदों पर महिलाओं और युवाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देना अनिवार्य किया जाए।
5. **दलबदल कानून में सुधार:**
   - अयोग्यता के मामले में निर्णय स्पीकर के बजाय राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा चुनाव आयोग की बाध्यकारी सलाह पर लिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष: निर्वाचन सुधार भारतीय लोकतंत्र की शुचिता और विश्वसनीयता के लिए आवश्यक हैं। सुधारों का उद्देश्य केवल कानून बनाना नहीं, बल्कि राजनीतिक दलों, मतदाताओं और उम्मीदवारों के नैतिक आचरण में सकारात्मक परिवर्तन लाना भी है, ताकि चुनाव वास्तव में जनता की इच्छा का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकें।

9. जाति (Caste) भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में कैसे कार्य करती है? भारतीय लोकतंत्र पर इसके प्रभाव का विश्लेषण कीजिए।

परिचय: जाति भारतीय समाज की एक मौलिक संस्था है। स्वतंत्रता के बाद, यह उम्मीद की गई थी कि आधुनिकीकरण और लोकतंत्र के कारण जाति का महत्व कम हो जाएगा, लेकिन इसके विपरीत, जाति भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली कारक के रूप में उभरी है।

जाति भारतीय राजनीति में एक कारक के रूप में:

1. **चुनावों में टिकट का आवंटन:** राजनीतिक दल उम्मीदवारों का चयन करते समय निर्वाचन क्षेत्र में जाति की संरचना (जातीय अंकगणित) का बारीकी से विश्लेषण करते हैं। प्रायः उसी जाति के उम्मीदवार को टिकट दिया जाता है, जिस जाति की संख्या उस क्षेत्र में सर्वाधिक होती है।
2. **मतदान व्यवहार को प्रभावित करना:** जाति एक मजबूत 'वोट बैंक' का निर्माण करती है। मतदाता अक्सर उसी जाति के उम्मीदवार को वोट देते हैं, भले ही उनकी राजनीतिक विचारधारा अलग हो। कई बार जाति पहचान राजनीतिक गोलबंदी का आधार बन जाती है।
3. **जाति आधारित संगठन:** जाति संघ और दबाव समूह (Pressure Groups) अपने हितों को साधने के लिए राजनीतिक दलों से सौदेबाजी करते हैं। ये समूह सरकार की नीतियों और निर्णयों को प्रभावित करते हैं (उदाहरण: आरक्षण की मांग)।
4. **मंत्रिपरिषद का गठन:** प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री मंत्रिपरिषद का गठन करते समय यह सुनिश्चित करते हैं कि सभी प्रमुख जातियों और समुदायों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिले, ताकि सरकार पर किसी एक जाति के वर्चस्व का आरोप न लगे।
5. **आरक्षण की राजनीति:** आरक्षण की नीतियां जाति आधारित राजनीति का केंद्र बिंदु हैं। विभिन्न जातियाँ ओबीसी, एससी या एसटी श्रेणी में शामिल होने के लिए राजनीतिक दबाव बनाती हैं ताकि उन्हें सरकारी नौकरियों और शिक्षा में लाभ मिल सके।

भारतीय लोकतंत्र पर जाति के प्रभाव का विश्लेषण:

सकारात्मक प्रभाव (वरदान)	नकारात्मक प्रभाव (अभिशाप)

राजनीतिक भागीदारी: जाति ने हाशिए पर पड़े समुदायों को राजनीतिक भागीदारी और शक्ति प्राप्त करने का अवसर दिया है।	जातिवाद/सांप्रदायिकता: यह संकीर्ण जातिगत पहचान को मजबूत करती है, जिससे समाज में विभाजन और तनाव बढ़ता है।
प्रतिनिधित्व: इसने सुनिश्चित किया है कि सभी सामाजिक समूह (विशेष रूप से दलित और पिछड़े वर्ग) विधानमंडलों में अपना प्रतिनिधित्व प्राप्त करें।	कुशलता में कमी: टिकट और पद का आवंटन योग्यता के बजाय जाति के आधार पर होने लगता है, जिससे प्रशासन और राजनीतिक नेतृत्व की गुणवत्ता गिरती है।
हितों का समूहीकरण: जाति समूह अपनी आवाज को सामूहिक रूप से उठाकर सरकार तक पहुँचाते हैं।	राष्ट्रीय एकता को खतरा: जातीय संघर्ष कभी-कभी हिंसक हो जाते हैं, जिससे कानून और व्यवस्था की समस्या उत्पन्न होती है।

निष्कर्ष: जाति भारतीय राजनीति में एक 'तथ्य' है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। राजनीति ने जाति को समाप्त नहीं किया, बल्कि जाति ने राजनीति का 'जातिगतकरण' (Casteization) कर दिया है। स्वस्थ लोकतंत्र के लिए, जाति की पहचान को केवल प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने तक सीमित रखना चाहिए, और इसे सांप्रदायिक या संकीर्ण राजनीतिक लाभ के लिए उपयोग करने से बचना चाहिए।

10. नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) की शक्तियों और कार्यों का वर्णन कीजिए। क्यों उसे 'सार्वजनिक धन का संरक्षक' कहा जाता है?

परिचय: नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General - CAG) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 148 के तहत स्थापित एक स्वतंत्र संवैधानिक प्राधिकरण है। वह भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग का प्रमुख होता है।

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) की शक्तियाँ और कार्य:

1. लेखा परीक्षा (Auditing): CAG केंद्र और राज्य सरकारों के सभी खर्चों की लेखा परीक्षा करता है। इसमें भारत की संचित निधि, आकस्मिकता निधि और सार्वजनिक खाते से किए गए व्यय शामिल हैं।
2. सरकारी कंपनियों का ऑडिट: वह केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा वित्तपोषित या स्वामित्व वाली सभी सरकारी कंपनियों और निगमों के खातों की लेखा परीक्षा करता है।
3. सलाहकार की भूमिका: वह केंद्र और राज्यों के लेखांकन के संबंध में राष्ट्रपति को सलाह देता है।
4. राष्ट्रपति को रिपोर्ट: CAG केंद्र सरकार के खातों से संबंधित अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है, और राष्ट्रपति इसे संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखवाते हैं।
5. विधानमंडलों को रिपोर्ट: वह राज्य सरकार के खातों से संबंधित अपनी रिपोर्ट राज्यपाल को प्रस्तुत करता है, जो इसे राज्य विधानमंडल के समक्ष रखवाते हैं।

CAG को 'सार्वजनिक धन का संरक्षक' क्यों कहा जाता है?

डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने CAG को भारतीय संविधान के तहत सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी कहा है, क्योंकि वह निम्नलिखित कारणों से 'सार्वजनिक धन का संरक्षक' (Guardian of the Public Purse) है:

1. विधायिका का एजेंट: CAG कार्यपालिका (सरकार) द्वारा संसद की अनुमति से किए गए व्यय की जाँच करता है। वह सुनिश्चित करता है कि सरकार ने उतना ही और उसी उद्देश्य के लिए पैसा खर्च किया है, जिसके लिए संसद ने इसे मंजूरी दी थी। इस प्रकार, वह संसद के प्रति जवाबदेह है, जो जनता का प्रतिनिधित्व करती है।
2. अवैध/अनियमित व्यय की जाँच: CAG केवल नियमों के अनुसार व्यय की जाँच नहीं करता, बल्कि औचित्य की लेखा परीक्षा (Propriety Audit) भी करता है। वह यह देखता है कि व्यय बुद्धिमानी, ईमानदारी और अर्थव्यवस्था के साथ किया गया है या नहीं। यदि कोई खर्च अनावश्यक या अपव्ययी है, तो वह उसे उजागर करता है।
3. सूचना का स्रोत: CAG की रिपोर्टें सरकार के वित्तीय कुप्रबंधन, अपव्यय, अक्षमता और भ्रष्टाचार के मामलों को उजागर करने का सबसे विश्वसनीय संवैधानिक स्रोत हैं। ये रिपोर्टें सार्वजनिक लेखा समिति (PAC) के लिए आधार बनती हैं, जो